भावप्रकाशन के संदर्भ में नाट्य-प्रयोग के प्रकार

डॉ. हमीरभाई पी. मकवाणा
श्री जे.एम पटेल पी जी स्टडीज एण्ड
रीसर्च इन ह्यूमिनिटीज, आनंद

भारतीय साहित्य परम्परा में नाट्यपरम्परा अति प्राचीन है। इस परम्परा का आरंभ कब हुआ यह निश्चित रूप से कह तो नहीं कहा जा सकता, परन्तु नाट्य उदभव के इतिहास का स्पष्ट विवरण भारतीय वाङ्मय में उपलब्ध होते है। भारतीय नाट्य परम्परा का प्रथम उपलब्ध ग्रन्थ भरत मुनि कृत 'नाट्यशास्त्र' मानाजाता है। परन्तु इस का अर्थ यह नहीं हैं कि भरत मुनि से पूर्व नाट्यशास्त्रियों का अस्तित्व नहीं था। भरत मुनि से पूर्व भी नाट्यशास्त्र के आनुवंशिक श्लोक एवं आचार्यों-शिष्यों की परम्परा की ओर संकेत करते है। इस से स्पष्ट होता है कि इन आचार्यों तथा श्लोको से युक्त नटसूत्र भरत से पूर्व विद्यमान थे। इस प्रकार नाट्यशास्त्र को जिन विद्धानों ने अपनी अनुपम प्रतिभा अलौकिक पाण्डित्य एवं असाधारण विवेचन कौशल से विभूषित कर उसे लोकप्रियता एवं व्यापकता प्रदान करने का प्रयास किया है, उन में 'शारदतानय' का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। 'भावप्रकाशन' शारदा-कृत शरदातनय का प्रमुख ग्रन्थ है। उन्होंने यह अनुपम एवं अद्वितीय ग्रन्थ की रचना करके स्वयं की रचना-कौशल एवं पाण्डित्य का परिचय कराया है। इस प्रकार 'भावप्रकाशन' नाट्यशास्त्र का प्रमुखतम् उपयोगी ग्रन्थ है।

नाट्यशास्त्रीय परम्परा में शारदातनय का अपना विशेष योगदान रहा है। जिस का श्रेय उनके प्रसिद्धग्रन्थ 'भावप्रकाशन' को है। श्लोकबद्ध इस ग्रन्थ में दस अध्याय है,जिन में नाट्य विषयक सामग्रीका अमूल्य खजाना सुरक्षित है। इस ग्रन्थ में अन्य अनेक ग्रन्थों तथा विद्वानों का साक्ष्य भी परिलक्षित होता है। शारदातनय ने अनेक ऐसे नाटकों का नामोल्लेख किया है, जो उनके पूर्ववर्ती अथवा परवर्ती आचार्यों ने नहीं किया। नाट्य प्रयोग के अंग प्रकार एवं सिद्धांतों का विवेचन करने से पूर्व नाट्य-प्रयोग के प्रारम्भ की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर एक संक्षिप्ततालोकन प्रतीत होता है। इसलिए शारदातनय ने नाट्य-प्रयोग का प्रारम्भ तथा क्रम का उल्लेख किया है। -'प्राचीनकाल में मनु पृथ्वी पालन के भार की चिंताओं से कालान्त होकर सुख-प्राप्ति के लिए पिता सूर्य के पास गये। सूर्य ने उन्हें भूमिभार क्लेश को दूर करने के लिए उपाय बताया। उन्होंने कहा कि समस्त स्थावरजंगम की सृष्टि करके उनके पालन की चिन्ता से व्याकुल एवं श्रान्त होकर ब्रह्मा विश्रान्ति के लिए विष्णु के पास गये। विष्णु ने सब प्रकार से विचार करके ब्रह्मा से शिवजी के पास जाने के लिए कहा। इसप्रकार आज्ञा पाकर ब्रह्मा शिवजी के समीप गये तथा अपनी खिन्नता के विषय में उनसे निवेदन किया। उस समय भगवान शिवने स्वरचित नाट्यवेद की शिक्षा नन्दिकेश्वर को प्रदान की नन्दिकेश्वर ने उस नाट्यवेद की शिक्षा ब्रह्मा को अर्पित करदी। इसप्रकार उस नाट्यवेद के प्रयोग की शिक्षा से सुख एवं विश्रान्ति प्राप्त करके अपने स्थान को आकर ब्रह्मा ने नाट्यवेद के प्रयोक्ता छ:मुनियों की सुष्टि की। उनमें भारती वृत्ति का प्रयोग करने के कारण उस नाट्य प्रयोक्ताओं को भारत कहा गया। यह कथा सुनकर मनु ने नाट्यप्रयोग से अपने भूभारश्रान्त को दूर करने के लिए ब्रह्मा से भारतों को देने की प्रार्थना की। ब्रह्माने समस्त भारतों को बुलाकर कहा कि-'आप मनु के साथ जाकर पृथ्वी पर नाट्यवेद का प्रयोग कीजिए।' भरतमुनि मनु के साथ पृथ्वी लोक (अयोध्या) आ गए। वहाँ रस, भाव, अभिनय, संगीत आदि विशेषताओं से युक्त नाट्यवेद के प्रयोग से मनु के भूभारवहनजन्य क्लान्ति को दूर किया।'[1] इस सन्दर्भ में शारदातनय देशी नाट्य-प्रयोग की उत्पत्ति का भी प्रतिपादन करते

[1] (भावप्रकाशन-पृ.२८७)

है। भरत और उनके शिष्यों ने देश-देश में नरेन्द्रों का मनोविनोद करने के लिए नाट्य-प्रयोग के साथ देश की रीतियों से परिष्कृत संगीत का जो प्रयोग किया, वही से देशी-प्रयोग की उत्पत्ति हुई। तब भरत ने नाट्यवेद के सार को उद्धधृत किया।'[2] ऐसे नाट्यवेद के प्रयोग को विधिवत् सम्पन्न करना चाहिए क्योंकि इस का अप्रयोग अमंगलकारी ही होता है। 'नाट्य प्रयोग में समस्त ज्ञान,शिल्प,कला,विधान,लौकिक तथा शास्त्रीय परम्पराओं का समन्वित रूप रहता है।'[3] इन सब तत्वों के सम्मिलित रूप के द्वारा ही नाट्य प्रयोग पूर्ण रूप से सफल होता है। इस नाट्य रूप को सम्पन्न करने के लिए सर्व प्रथम नाट्य प्रयोंक्ताओं की आवश्यकता होती है, अतः इस संगीत युक्त नाट्यशास्त्र की प्रयोग-सिद्धि के लिए शारदातनय ने विभिन्न प्रयोक्ताओं के लक्षण, स्वरूप एवं कर्म के विषय में विस्तार पूर्वक विचार किया है। इन प्रयोक्ताओं में सूत्रधार, नान्दीपाठक, नट, नटी, पारिपार्श्विक, कुशीलव, विदुषक शौलूषक, शौलूष भरत इत्यादि का निर्वचन शारदातनय ने व्यवस्थित रूप से प्रतिपादित किया। 'सूत्रधार'शब्द का निर्वचन अति स्पष्ट किया गया है। जो काव्य की वस्तु, नेता, कथा एवं रसों का सूत्रपात करता है, तथा नान्दी के अन्त में प्रयुक्त होता है, वह सूत्रधार कहलाता है।'[4] समस्त नाट्य-प्रयोग का सूत्र वही धारण करता है, उसी के संकेत द्वारा नाट्य-प्रयोग के पात्रादि गतिशील रहते है। नाट्यशास्त्र में भी सूत्रधार के अनेक गुणों की गणना की गई है। शारदातनय के परवर्ती शिंगभूपाल ने जो सूत्रधार का लक्ष्ण बताया है, वह अपेक्षाकृत अल्प है।

'नान्यन्ते तु प्रविष्टेन सूत्रधारणे धीमता। प्रसधनाय रंगस्य वृत्तिर्योज्या हि भारती।।'[5]

साथ ही उस पर शारदातनय के इस लक्षण का स्पष्ट प्रभाव रहा है कि सूत्रधार रंग के प्रसाधन में प्रौढ़ अर्थात् कुशल होता है। सूत्रधार के आगमन से पूर्व 'नान्दी-पाठ' किया जाता है। जो नाट्य-प्रयोग की विघ्न-रहित समाप्ति के लिए मांगलिक वचनो से युक्त होता है। अतः अन्य नट आदि शब्दों के निर्वचन से पूर्व 'नान्दी' का स्वरूप वर्णन करना जरूरी है। शारदातनय ने नान्दी तथा नान्दीपाठ का स्वरूप स्पष्टतः प्रतिपादित किया है। जहाँ भरत ने केवल नान्दी का ही स्वरूप वर्णित किया है। वहा शारदातनय ने नान्दी के स्वरूप के साथ-साथ नान्दीपाठ का भी कार्य एवं लक्षण प्रतिपादित किया- 'देवतादिनमस्कार मंगलारम्भ पाठकै:। या क्रिया नन्यन्ते नट्यारम्भेनान्दीतिसा स्मृता।।'[6]

शारदातनय- कृत नान्दी वर्णन में एक मौलिक पौराणिकतत्व का उल्लेख है। उन्होंने नान्दी की उदभावना सर्वप्रथम जगतपति शिवजी के नृत्य-कला में उपस्थित वृष नन्दी की पूजा से मानी है। उन्होंने नान्दी की एक अति सरल व्युत्पत्ति का भी निर्वचन किया है कि सभ्यों को जो आनन्दित करे, वही नान्दी है-'सभ्यान्नन्दय तित्येवं सापि नान्दितिकीर्त्यते।' नान्दी को विघ्नों की परिसमाप्ति के लिए करना आवश्यक है। नान्दी का चन्द्र-सम्बन्ध हेतु कथन शरदातनय का मौलिक निरूपण है। नान्दी के उत्थापन आदि चार अंग होते है। नान्दी कहीं वाक्यों द्वारा विवक्षित होते है, तो कहीं वह सम्पदा (समानपदावली) होती है। 'नट' उसे कहते है, जो रसभाव से समन्वित अतीत के लोक वृतान्त को स्वाभाववत् अभिनीत करता है। शारदातनय ने नट की कर्तव्यता का भी निरूपण बखूबी से किया है कि गीत, वाध, नृत्त अभिनयादि के द्वारा रंग में रस आदि से तादात्मय करके नट प्रेक्षकों को रसास्वादन करता है। नट का कर्म-क्षेत्र रंगमंच होता है। इसलिए इसी संदर्भ में 'रंग' का स्वरूप प्रतिपादित करना जरुरी है। जहाँ नट-नटी परस्पर अनुरंजन करने से मुदित होते है, वह 'रंग' है। और रंग की प्रकल्पना पूर्व में आती है । अतः उसे पूर्वरंग भी कहते है। अन्य शब्दों में जहाँ कालापात, पादभाग परिवर्तन इत्यादि पूर्व में किये जाते है, उसे पूर्वरंग कहते है। पूर्वरंग की क्रियाओं के द्वारा (नट- नटी आदि) परस्पर मनोरंजन कराते है एवं सुविधा प्राप्त करते है। क्योंकि नट-नटी की बहुत-सी क्रियाओं का प्रयोग अन्तर्यवनिका में होता है। शरदातनय ने पूर्वरंग के

[2] (वही पृ. २८७)
[3] (नाट्यशास्त्र चौखम्बा १/११३-११५)
[4] (भावप्रकाशन-पृ.-२८८)
[5] (र.सु ३/१३९)
[6] (भावप्रकाशन-पृ.१९६)

प्रत्याहार, परिघट्टना इत्यादि बाईस अंगो का भी उल्लेख किया है। इन अंगों में से एक अंग नान्दी भी है। 'शारदातनय 'नाधन्ते' का शब्दार्थ कथन करते हुए उसमें षष्ठी तत्पुरुष की ओर इंगित करते है।'[7]

विभिन्न नाट्य प्रयोक्ताओं के स्वरूप – निर्वचन के सन्दर्भ में शारदातनय 'शौलूष' शब्द का स्वरूप प्रयुक्त करते है। ततपश्चात वह 'भरत' शब्द का निर्वचन करते है कि –

'नानाशीलस्य लोकस्य भावन् भास्यतीह यः।
भूमिकास्ता: प्रविश्यात:शौलूष इति कथयते।।'[8]

जो भाषा-वर्ण उपकरणों के द्वारा नाना प्रकृति से युक्त वेष, अवस्था, कर्म, चेष्टा आदि को धारण करता है वह 'भरत कहलाता है। भरत के द्वारा अभिनीत नाना रसाश्रय युक्त भाव को जो पार्श्व में ही स्थित रहकर परिष्कृत करता है, उसे 'पारिपार्शिवक' कहा जाता है। यहाँ पर शारदतनय नाट्य-प्रयोक्ताओं के उन गुणों का कथन करते है जो नाट्य में आवश्यक है। तदन्तर शारदातनय कुशीलव का लक्षण निरूपण करते है कि –'अनेक भूमिकाओं के द्वारा वागंगकर्म चेष्टाओं के द्वारा प्रकृति के सन्धान में कुशल होते है, वे कुशीलव कहलाते है।'[9] नटी का स्वरूप बताते हुए शरदातनय लिखते है कि – 'चतुराधभेदों की ज्ञाता,कलाओं में कुशल,करणाभिनयकी ज्ञाता,समस्त प्रकार की भाषाओँ के ज्ञान में विचक्षण नट की गृहिणी नटी कहलाती है। विदूषक का स्वरूप-वर्णन करने के साथ ही साथ उनके सहायक विटका भी स्वरूप निरुपित किया है। ये विदूषक विट, चेट आदि नाट्य प्रयोक्ता राजा (नायक) के लिए सुखकारी होते है। ऐसे राजा(नायक) के राजपरिवार में अनेक पात्र होते है जौसे-अन्त:पुरिका, परिचारिका, अनुचारिका, संचारिका, अन्त:पुरचर, महिषी, महादेवी,देवी, भोगिनी, आश्रिता, नाटकीयता कामुका, शिल्पकारिका, प्रेक्षणिका, महचरी, प्रतिहारी, कुमारी,वृद्धा, आयुक्तिका,कंचुकीय,वर्षवर, किरात, औपस्थापिक, निर्मुण्ड, अभ्यागार, मूक, सभासद, वैतालिक, बन्दिजन आदि।'[10] इनकी योजना वस्तु के अनुरूप आवश्यकतानुसार करनी चाहिए।

नाट्य प्रयोग की सिद्ध के लिए अनुकूल नाट्य-मण्डपों का विधान अत्यंत अपेक्षित है। भावप्रकाश में जो चतुरस्र एवं त्रयस्र नाट्य मण्डपों के नामों का प्रयोग है उस पर तो भरत का प्रभाव माना जा सकता है। परन्तु 'वृत' नामक जो नाट्य मण्डप है, उसकी परिकल्पना सर्वथा मौलिक है। यह भी ध्यातव्य है कि इन रंगमण्डपों की वर्णन-शैली शारदातनय की अपनी अनूठी विशेषता है।'भरत ने चतुरस्र एवं त्रयस्र नामक नाट्यमण्डपों के अतिरिक्त तृतीय प्रकार नाट्यमण्डप 'विकृष्ट' भी कहा है- 'विकृष्टश्चतुरस्रश्च त्रयश्रश्चैव हि मण्डप:।'[11] भरत ने चतुरस्र एवं त्रयस्र नाट्यमण्डप का वर्णन करते हुए उनके आकार इत्यादि का उल्लेख किया है। किन्तु शारदातनय ने इन नाट्यमण्डपों का वर्णन नवीन ढंग से प्रतिपादित किया है। उन्होंने जिस चतुरस्र मण्डप की चर्चा की है,उसमे राजा के साथ राजमहरषीँ ऋत्विक पुरोहित आचार्य अन्तपुर के जन इत्यादि उपस्थित रहकर मार्ग प्रक्रिया के साथ संगीत की संयोजना करते है। चतुरस्र में मार्ग व् देशी-इन दोनों की मिश्रित संगीत-योजना की जाती है । 'वृत्त' नामक नवीन नाट्यमण्डप में राजा परिजनों तथा सभासदों के सहित संगीत की योजना करते है । इस वृत्त नामक नवीन नाट्य-मण्डप में (मार्गदेशी) मिश्र संगीत एवं चित्र नृत्य की योजना की जाती है । वेदपुराणकाल से लेकर भावप्रकाशन तक तथा उसके परिवर्ती ग्रंथो पर विचार करने से स्वतः सिद्ध हो जाता है कि शारादतनय की नाट्यमण्डप की चित्रण-शैली नितान्त नवीन है। जो कि संगीतक्रिया की योजना की अनुपेक्षणीय उपेक्षा रखती है। 'यजुर्वेद में ऐसे नाट्यमण्डप की चर्चा है, जिस में शौलूष,विदूषक चित्रकारिणी आदि पत्रों एवं विविध सामग्रियों

[7] (भावप्रकाशन- पृ. १९५)
[8] (भावप्रकाशन –पृ.२८८)
[9] (वही पृ.२८८)
[10] (भावप्रकाशन –पृ.२८९)
[11] (नाट्यशास्त्र चौखम्बा-२।८)

यथा विणा मजीरा आदि वाधों का एकत्रित प्रयोग हो सके।'[12] हरिवंशपुराण में पारितोषिक वितरणादि का कार्यक्रम भी नाट्यमण्डपों में किया जाता था। 'मत्स्यपुराण में वस्तु शिल्प प्रासाद निर्माण आदि की चर्चा है।'[13] विष्णुधर्मोत्तर पुराण में दो प्रकार के नाट्य मण्डपों का मात्र उल्लेख है।[14] अग्निपुराण में गृह प्रासाद वास्तुकला के विधान के साथ नाटों-नर्तकियों के लिए दक्षिण दिशा में नाट्यमण्डप के निर्माण का विधान प्रस्तुत किया है।[15] पातंजली महाभाष्य में नाट्यमण्डपों में नट-स्त्रियों के द्वारा परिहास आदि का वर्णन मिलता है। वाल्मीकि रामायण में रंगशालाओं नाटकों आदि की चर्चाओं का उल्लेख मिलता है। कामशास्त्र में भी नाट्यगृहों का उल्लेख है, जिनमें कुशीलवों के द्वारा उत्सव इत्यादि प्रस्तुत किये जाते थे। अर्थशास्त्र की रचना के समय तक नाट्यमण्डप इतने अधिक विकसित हो चुके थे कि उनमें नटों को वेतन आदि भी संभवत: दिया जाता होगा। राजशेखर के काल तक आते-आते भरत के समय में ही नाट्यमण्डपों का विकास पूर्ण रूपेण हो चूका था। भावप्रकाश में भी राजभवनों से सम्बन्धित नाट्यमण्डपों का वर्णन है । नाट्य नृत-योजना के बिना अधूरा ही मानाजाता है। नाट्य नृत्त के बिना शोभित नहीं हो सकता । नाट्यशास्त्र में नृत्त के प्रमुख दो भेद ताण्डव एवं लास्य माने गये है। इसी के आधार पर शारदातनय ने भी ताण्डव और लास्य –इन दो भेदों को उद्धत तथा मधुर कहा है। लास्य में ललित अंगहार ललित लय कौशिकी वृत्ति तथा गीति का प्रयोग होता है, ताल, गीत, वाध, नृत्त, तथा अभिनय के क्रम में जो सुकुमार प्रयोग करता है, उसे लास्य कहा है। तथा उद्धव करणों उद्धत अंगहारों आरभटी वृत्ति से युक्त गीतकाल में प्रयुक्त नृत्त को ताण्डव कहा जाता है। नाट्यशास्त्र की भांति शारदातनय ने गेयपदादि दश लास्यांग स्वीकारे है। इसके अतिरिक्त शारदातनय लास्य को शृंखला, लता, पिण्डी, मेधक, चार प्रकार का वर्णित किया है भाव के भेद से भी लास्य के अनेक भेदों का उल्लेख किया है। यथा रुच्चा, गुण्डली आदि। ताण्डव भी चण्ड, प्रचण्ड एवं उच्चण्ड तीन प्रकार का होता है। नाट्यशास्त्र में भी ताण्डव तथा लास्य से नृत्य की अभिव्यंजना की गई है जिसमे स्त्री तथा पुरुषो द्वारा मिले-जुले रूप से किया जाता है उसे 'सप्तलास्य' कहते है। इन में से प्रथम दो शुद्ध एवं देशी ताण्डव के रूप है। तथा शेष पांच पेरुणी पेड्:खणी, कुण्डली दण्डक तथा कलश नामक भेदों को लास्य कहा गया है। इनमे देशी ताण्डव का वर्णन शारदातनय ने भी प्रस्तुत किया है, जिस में देशी ताल, देशीभाषा वीर अद्भूत, श्रृंगार हास्य रस की योजना की जाती है। किन्तु इस नृत्य का कभी-कभी ही प्रयोग किया जाता है। सर्वत्र रूपकों में इस का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

नाट्य-नृत्व अथवा नृत्त वृन्दहीन कदापि संभव नहीं है। अतः नाट्य प्रयोग में नृत्यादि की योजना के समय वृन्द (orchestra)। का विधान आवश्यक रूप से प्रकल्पित किया जाना चाहिए। वृन्द में नट,नर्तक,गायक,वादक मिलकर प्रयोग करते है। आंतरिक तथा बाह्य के भेद से वृन्द दो प्रकार का होता है।ज्येष्ठ तथा मध्य एवं कनिष्ठादि के भेद से वृन्द पुनः तीन प्रकार का होता है । लास्य एवं ताण्डवादि के प्रयोग में वृन्द की अत्यधिक आवश्यकता होती है-'जो की वृन्द पांच प्रकार का भी होता है। जिसका नाम है-उत्तमोत्तम, उत्तम, मध्येमोत्तम, मध्यम, कनिष्ठ । वृन्द प्रयोक्ताओं के गुणों का भी विस्तृत वर्णन शारदातनय ने किया है जिनका ध्यान नाट्यनृत्य –प्रयोग के अवसर पर रखना आवश्यक है।'[16] शारदातनय ने जो देशी और मार्ग नृतों का संयोजन निर्देशित किया है, उसमे 'मार्ग'में ध्रुवा का प्रयोग होता है। ध्रुवा पांच प्रकार की होती है।– प्रावेशिकी, आक्षेपिकी, प्रासदिकी, तथा नौष्क्रामिकी। ध्रुवा में अलंकार, लय, वर्ण, गीति, यति, पाणि का प्रयोग होता है। भरत ने भी ध्रुवा गान को अत्यंत उपयोगी बताया है। शारदातनय ने जो प्रावेशिकी आदि पांच भेद ध्रुवा के वर्णित किये है, वे भरतानुसार ही है। शारदातनय ने ध्रुवागान में भाषा नियम का निर्देश किया है। बल्कि नाट्यशास्त्र में उसका उल्लेख नहीं है। शारदातनय ने नाट्य प्रयोग विधि के संदर्भ में ही नायक नायिकादि पात्रों के उपमेयगुणों का विस्तृत निर्देश किया है। नाट्य में प्रयोक्ताओं के द्वारा इन औपम्य विशेषों का रसभाव के अनुरूप प्रयोगकरना चाहिए। नाट्यप्रयोग में रस एवं

[12] (यजुर्वेद -३०।६)
[13] (मत्स्यपुराण, अध्याय-२५२-५७)
[14] (विष्णुधर्मोत्तरपुराण २०।८-७।)
[15] (अग्निपुराण,अध्याय-१०२-१०६)
[16] (भावप्रकाशन-पृ.२९८)

भाव तो सर्वप्रमुख तत्व है। साथ ही भावों की अभिनेयता का होना आवश्यक है। इन दोनों की वक्यार्थता भी अत्यंत अपेक्षित है। नाट्य में केवल रस भाव को ही नहीं अलंकारों की तथा गुणों की भी वाक्यार्थता नितान्त अनिवार्य है। उदहारण के रूप में भारवि तथा कालिदास ने रसभाव, अलंकार तथा गुणों की वाक्यार्थता प्रदर्शित की है।

नाट्यशास्त्र में कहा है कि देशादि विशेष के अनुसार तोटकादि नृत्य भेदों की योजना नाट्य-प्रयोग में प्रयुक्त की जानी चाहिए । नाट्य में विभिन्न देशों के वर्णन के अनुसार तदुपयुक्त भाषा तथा पात्रों का विधान होना चाहिए । शारदातनय नाट्योपयोगी भाषाओँ सम्बन्ध में निर्देश करते है कि –'संस्कृत, प्राकृत, पैशाची, मागधी, शौरसेनी, तथा अपभ्रंश आदि विभाषाओं तथा वैभाषिकों का भी उल्लेख किया है। शारदातनय नटों के लिए नितान्तावश्यक परिज्ञेय का कथन भी किया है कि नटों के लिए आवश्यक है, कि उन्हें देश-देश के आचार-विचार व्यवहार वेष-भूषा, आकार-प्रकार विहार तथा भिन्न-भिन्न प्रकृति आदि का सम्यक ज्ञान हो जिस से कि उनका नाट्य में अभिनय सफल हो सके। नाटक के पात्रों के लिए उपयोग में आने वाली भाषा के नियम-निर्देश भी शारदातनय ने किए है। पुरुषों तथा उत्तम पात्रों को संस्कृत भाषा बोलनी चाहिए तथा स्त्रियों के द्वारा प्राकृत, शौरसेनी का प्रयोग होना चाहिए। अत्यंत निम्न श्रेणी के पात्र के द्वारा पैशाची भाषा तथा अन्य नीच पात्र जिसे देश से सम्बन्धित हो, उस देश की प्रचलित भाषा का प्रयोग करना चाहिए। इसके अलावा पात्रों के लिए परस्पर- व्यवहारोपयोगी कुछ पारिभाषिक शब्दो तथा इत्यलम् वाढम् , कान्ते, प्रिये, आर्य इत्यादि का प्रयोग किन-किन पात्रों को किस अवसर पर किस प्रकार करना चाहिए उस का भी निर्देश किया है।

इन सब तत्वों के अलावा नाट्यप्रयोग का एक अन्य प्रमुख तत्व भी है। जिसे 'अभिनय' कहते है। नाट्य प्रयोक्ताओं के अभिनय के बिना नाट्यप्रयोग को अभिनीत ही नहीं किया जा सकत है। भरत ने यह अभिनय चतुर्विध कहा है।–'आंगिक, वाचिक, सात्विक, आहार्य।'[17] इसी आधार पर अभिनवदर्पण, दश रूपक, नाट्यदर्पण, श्रुंगारप्रकाशन, साहित्यदर्पणादि ग्रंथो में अभिनय की चर्चा प्राप्त है। शारदातनय तो वाचिकादि अभिनय को इतना अधिक प्रयोज्य एवं अपेक्षित मानते है कि नाट्य के प्रमुखत्तम तत्व 'रस' का विवेचन एवं विभावादि का वर्णन वाचिकांगिकादि के भेद सहित ही विस्तार से प्रस्तुत करते है।इस तरह नाट्य प्रयोग के समस्त तत्वों पर विचार करने से यह स्पष्ट होता है कि शारदातनय ने इस विषय में किसी भी तत्व को अछूता नहीं छोड़ा। रस, भाव, पात्र, अभिनय, रंगमच, भाषा, नाट्यमण्डप, संगीतयोजना, नृत्यविधान वाध-प्रयोग, वेष-विन्यास तथा नाट्योपयोगी वृतियों आदि अनेकानेक विषयों का आकलन प्रस्तुत करके नाट्यप्रयोग विधि को सम्पन्नता से प्रदर्शित किया है। शारदातनय के पूर्ववर्ती तथा परवर्ती नाट्यसम्बन्धित ग्रंथो में विद्धानो की द्रष्टि केवल नाट्य तत्वों पर ही अधिक रही है,संगीत से सम्बन्धित तत्वों पर किंचित ही रही है। परवर्ती नाट्य ग्रन्थों साहित्यदर्पण, रसार्णवसुधाकर आदि से भी यही बात स्पष्ट होती है,परन्तु भावप्रकाशन में संगीत के सभी पक्षो, गायन, वादन, नृत्य, नृत्त, ताण्डव, लास्य, ताल, श्रुति, स्वर, आदि पर भी व्यापक विचार किया गया है, जितना कि नाटक के अन्य पक्षों पर।

परन्तु इसमें संदेह नहीं कि शारदातनय के भावप्रकाशन का आधार-ग्रन्थ नाट्यशास्त्र ही रहा होगा, क्योंकि वे अनेक स्थलो पर 'भरतादिभि' शब्द का प्रयोग करते है तथा भरत के मत को प्रतिपादित करते चलते है। इसलिए यह स्पष्ट होता है। इसके अलावा नाट्यप्रयोग सम्बन्धित जो उनकी मौलिकताएँ है वे तो अपना उच्चतम स्थान निर्धारित कर ही लेती है। पात्र, जाति, एवं देशों के अनुकूल भिन्न-भिन्न भाषों का दशम अधिकार में जैसा वर्णन शारदातनय ने किया है । वह अन्यत्र दुर्लभ है। नाट्यप्रयोक्ताओं का वर्णन करने में उनकी द्रष्टि भरतमुनि के ही समान बिलकुल सैद्धांतिक के साथ व्यवहारिक रही है। नृत्यविधान के वर्णन में उन्होंने नृत्त-नृत्य आदि का मार्ग व् देशी के भेद से कथन करते हुए ताण्डव एवं लास्य का जो विस्तृत तथा व्यवस्थित निरूपण किया है, वैसा विस्तार तो नाट्यशास्त्र में भी दिग्दर्शित नहीं है। फिर अन्य भरत

[17] (नाट्यशास्त्र-(गा.ओ.सी.) ८/१०)

परवर्ती विद्धानों की दृष्टि प्रयोगात्मक न होने के कारण तत्तद् ग्रन्थों में तो व्यापकता एवं व्यवहारिकता का अन्वेषण करना भी व्यर्थ है। शारदातनय का सर्वाधिक महत्वपूर्ण मत तो नाट्य प्रयोग की सर्वप्रथम अवधारणा के विषय में है। भरत नान्दिकेश्वर आदि से कतिपय भिन्न ढंग से वे नाट्य प्रयोग की उत्पत्ति एवं विकास मानते है। इस विषय में उनका मत भरतादि से किसी भी प्रकार से कम महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि रोचक तर्कसंगत सा है। शारदातनय ने नाट्यप्रयोग की सिद्धि के लिए जिन विभिन्न तत्वों एवं शास्त्रीय सिद्धांतों का उल्लेख किया है, उनका विधान नाट्यप्रयोग की सिद्धि के चरमोत्कर्ष के लिए सर्वथा अनुकूल है।